वर्तनाका अर्थ

पण्डित राजमलजी द्वारा रचित 'अध्यात्मकमलमार्तण्ड' एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें विद्वान् लेखकने जैन दर्शनमें मान्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंका विशद निरूपण किया है। इसका हिन्दी अनुवाद और सम्पादन हमने किया है तथा जैन साहित्यकी प्रसिद्ध संस्था 'वीर-सेवा-मन्दिर' से उसका प्रकाशन हुआ है। इसमें वर्तनाका जो अर्थ हमने दिया है उसपर 'जैन गजट' के सम्पादक पं० वंशीधरजी शास्त्री सोलापुरने कुछ आपत्ति प्रस्तुत की है। ग्रन्थकी समालोचना करते हुए उन्होंने लिखा है—

'पृष्ठ ८३ में कालद्रव्यका वर्णन आया है, वहाँ वर्तनाका हिन्दी अर्थ गलत हो गया है। वर्तनाका अर्थ लिखा है—द्रव्योंके अपने रूपसे सत्परिणामका नाम वर्तना है। यह जो अर्थ लिखा गया है वह परिणामका अर्थ है—वर्तनाका यह अर्थ नहीं है। 'वर्तना' शब्द णिजन्त है। उसका अर्थ सीधी द्रव्यवर्तना नहीं है, किन्तु द्रव्योंको वर्ताना अर्थ है। इसीलिये वर्तनारूप पर्याय खास अथवा सीधा कालपर्याय माना गया है और इसी सबबसे वर्तना द्वारा निश्चयकालद्रव्यकी सिद्धि होती है। यदि वर्तनाका अर्थ जैसाकि यहाँके हिन्दी अर्थमें बताया गया है कि द्रव्योंका सत्परिणाम वर्तना है तो कालके अस्तित्वका समर्थक दूसरा हेतु मिलना कठिन हो जायेगा। इसलिये पूर्वग्रंथोंके नाजुक एवं महत्त्वयुक्त विवेचनोंपर आधुनिक लेखकोंको आदरसे ध्यान रखकर अपनी लेखनी चलानी चाहिए"।

इस पर विचार करनेके पूर्व मैं 'अध्यात्मकमलमार्तण्ड' के उस पूरे पद्य और उसके हिन्दी अर्थको भी यहाँ प्रस्तुत कर रहा हुँ। इससे पाठकोंके लिये समझनेमें सहूलियत होगी। पद्य और उसका हिन्दी अर्थ इस प्रकार है—

"द्रव्यं कालाणुमात्रं गुणगणकलितं चाश्रितं शुद्धभावै-
स्तच्छुद्धं कालसंज्ञं कथयति जिनपो निश्चयाद् द्रव्यनीतेः।
द्रव्याणामात्मना सत्परिणमनमिदं वर्तना तत्र हेतुः
कालस्यायं च धर्मः स्वगुणपरणतिर्धर्मपर्याय एषः॥

अर्थ—गुणोंसे सहित और शुद्ध पर्यायोंसे युक्त कालाणुमात्र द्रव्यको जिनेन्द्र भगवान्ने द्रव्यार्थिक निश्चयनयसे शुद्ध कालद्रव्य अर्थात् निश्चयकाल कहा है। द्रव्योंके अपने रूपसे सत्परिणामका नाम वर्तना है। इस वर्तनामें निश्चयकाल निमित्तकारण है—द्रव्योंके अस्तित्वरूप वर्तनमें निश्चयकाल निमित्तकारण होता है। अपने गुणोंमें अपने ही गुणों द्वारा परिणमन करना कालद्रव्यका धर्म है—शुद्ध अर्थक्रिया है और यह उसकी धर्मपर्याय है।

यहाँ पद्यका हिन्दी अर्थ हूबहू मूलके ही अनुसार किया गया है। मूलमें जो वर्तनाका लक्षण "द्रव्याणामात्मना सत्परिणमनमिदं वर्तना" किया गया है वही—"द्रव्योंके अपने रूपसे सत्परिणामका नाम वर्तना है" हिन्दी अर्थमें व्यक्त किया गया है। अपनी ओरसे न तो किसी शब्दकी वृद्धि की है और न अपना कोई नया विचार ही उसमें प्रविष्ट किया है। अतः यदि इस हिन्दी अर्थको गलत कहा जायगा तो मूलको भी गलत बताना होगा। किन्तु मूलको गलत नहीं बतलाया गया है और न वह गलत हो सकता हैं। प्रतीत होता है कि पंडितजीने मूलपर और सिद्धान्तग्रंथोंमें प्रतिपादित वर्तनालक्षणपर ध्यान नहीं दिया और यदि कुछ दिया भी हो तो उसपर सूक्ष्म तथा गहरा विचार नहीं किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तवमें अनेक विद्वान् यही समझते हैं कि वर्तना कालद्रव्यकी ही खास पर्याय, परिणमन अथवा गुण है[1] और वह सीधी कालपर्याय है। पर यथार्थमें यह बात नहीं है। वर्तना जीवादि छहों द्रव्योंका अस्तित्व-रूप (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक)[2] स्वात्मपरिणमन है और इस अस्तित्वरूप स्वात्मपरिणमनमें उपादानकारण तो तत्तद्द्रव्य हैं और साधारण बाह्य निमित्तकारण अथवा उदासीन अप्रेरक कारण कालद्रव्य है।[3] यदि प्रत्येक द्रव्य स्वत. वर्तनशील न हो तो वर्तनाको केवल कालद्रव्यकी सीधी पर्याय मानकर भी कालको उनका वर्तयिता—वर्तानेवाला नहीं कहा जा सकता और न वह हो ही सकता है। किन्तु जब प्रत्येक द्रव्य प्रतिसमय वर्त रहे होंगे तभी वह कालाणु (काल द्रव्य) प्रत्येक समय उनके वर्तानेमें निमित्तकारण होता है। अतएव जिस प्रकार धर्मादि द्रव्य न हों तो जीव-पुद्गलोंकी गत्यादि नहीं हो सकती अथवा कुम्हारके चाककी कीली न हो तो चाक घूम नहीं सकता। उसी प्रकार कालद्रव्य न हो तो निमित्तकारणके विना उन द्रव्योंका वर्तन नहीं हो सकता है। इसी निमित्तकारणताकी अपेक्षासे ही धर्मादिद्रव्यके गत्यादि उपकारकी तरह वर्तनाको कालद्रव्यका उपकार कहा गया है। इसी बातको सर्वार्थसिद्धिकार आ० पूज्यपादने कहा है—

'धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्त-त्प्रवर्तनोपलक्षितः काल इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकारः।' —स० सि० ५-२२।

विद्वद्वर्य पं० राजमल्लजीने अपना पूर्वोक्त वर्तनालक्षण पूज्यपादके इसी वर्तनालक्षणके आधारपर रचा जान पड़ता है, क्योंकि दोनों लक्षणोंको जब सामने रखकर एक साथ पढ़ा जाता है तो वैसा स्पष्ट प्रतीत होता है। आ० अकलङ्कदेव भी यही कहते हैं—

"प्रतिद्रव्यपर्यायमन्तर्नीतैकसमया स्वसत्तानुभूतिर्वर्तना···एकस्मिन्नविभागिनि समये धर्मादीनि द्रव्याणि षडपि स्वपर्यायैरादिमदनादिमद्भिरुत्पादव्ययध्रौव्यविकल्पैर्वर्तन्ते इति कृत्वा तद्विषया वर्तना। साऽनुमानिकी व्यावहारिकदर्शनात् पाकवत्। यथा व्यावहारिकस्य पाकस्य तंदुल-विक्लेदनलक्षणस्यौदनपरिणामस्य दर्शनादनुमीयते—अस्ति प्रथमसमयादारभ्य सूक्ष्मपाकाभिनिर्वृत्तिः प्रतिसमयमिति। यदि हि प्रथमसमयेऽग्न्युदकसन्निधाने कश्चित् पाकविशेषो न स्यात्, एवं द्वितीये तृतीये च न स्यात् इति पाकाभाव एव स्यात्। तथा सर्वेषामपि द्रव्याणां स्वपर्यायाभिनिर्वृत्तौ प्रति-समयं दुरधिगमा निष्पत्तिरभ्युपगन्तव्या। तल्लक्षणः कालः। सा वर्तना लक्षणं यस्य स काल इत्यवसेयः। समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिनिर्वृत्त्यानां च पर्यायाणां पाकादीनां स्वात्म-सद्भावानुभवनेन स्वत एव वर्तमानानां निर्वृत्तेर्बहिरङ्गो हेतुः समयः पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढि-सद्भावे काल इत्ययं व्यवहारोऽकस्मान्न भवतीति तद्व्यवहारहेतुनाऽन्येन भवितव्यमित्यनुमेयः।"

—त० वा०, ५-२२

यहाँ अकलङ्कदेवने बहुत ही विशदताके साथ कहा है कि "हरेक द्रव्यपर्यायमें जो हर समय स्वसत्ता-नुभवन—वर्तन होता है वह वर्तना है। अर्थात् एक अविभागी समयमें धर्मादि छहों द्रव्य स्वतः ही अपनी सादि और अनादि पर्यायोंसे जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूप हैं, वर्त रहे हैं उनके इस वर्तनको ही वर्तना कहते हैं

---

१. उदाहरणस्वरूप देखें, जयधवला, प्रथम पुस्तक (मुद्रित), पृ० ४०।

२. 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्', 'सद् द्रव्यलक्षणम्'-त० सू० ५-३०, २९।

३. जैन सिद्धान्तदर्पण, प्र० भा०, पृ० ७२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और चूंकि तत्तत् समय उसमें अप्रेरक बाह्यनिमित्तकारण होता है। इसलिए वर्तनाके द्वारा निमित्तकारण-रूपसे कालद्रव्य अनुमेय है, इसीसे वर्तनाको काल-द्रव्यके अस्तित्वका समर्थक मुख्य हेतु कहा जाता है।

आ० विद्यानन्दने[1] भी इसी तरहका विस्तृत वर्णन किया है। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४१४ पर एक अनुमान ही ऐसा प्रस्तुत है, जिसमें उन्होंने स्पष्टतया जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और इनकी व्यापक सत्ता तथा सूर्यगति आदिकी ही वर्तना स्वीकार की है और उसके द्वारा बहिरङ्गकारणरूपसे काल-की सिद्धि की है। जब शंकाकारके द्वारा कालवर्तनाके साथ व्यभिचार दोष उपस्थित किया गया तब उन्हों-ने कालकी मुख्य वर्तना न होनेका ही सिद्धान्त स्थापित किया है और धर्मादि द्रव्योंकी ही मुख्य वर्तना बतलाई है। कालद्रव्यकी भी मुख्य वर्तना माननेमें अनवस्था दोष दिया गया है। साथमें यह भी कहा गया कि काल-में वृत्ति और वर्त्तकका विभाग न होनेसे मुख्य वर्तना बन भी नहीं सकती। यदि शक्तिभेदसे वृत्ति और वर्त्तकका विभाग माना जावे तो कालद्रव्यकी भी वर्तना कही जा सकती है क्योंकि कालवर्तनाका बहिरङ्गकारण वर्तक शक्ति हो जाती है। इस तरह विद्यानन्द स्वामीने अनुमानमें उपस्थित किये गये व्यभिचार दोषको उत्सारित किया है। विद्यानन्दके इस स्फुट विवेचनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि वास्तवमें वर्तना सभी द्रव्यगत है और काल उसमें केवल बहिरंग कारण है। द्रव्योंके इस वर्तना—अस्तित्वरूप परिणमनमें बहिरंग कारण न तो आकाश है और न जीवादिद्रव्य हैं, क्योंकि वे सब तो उसके उपादान कारण हैं और प्रत्येक कार्य उपादान तथा निमित्त इन दो कारणोंसे होता है। अतः वर्तनाके उपादान कारण जीवादिसे अतिरिक्त निमित्तकारणरूपसे निश्चयकालद्रव्यकी सिद्धि होती है।

सर्वार्थसिद्धि (सोलापुर संस्करण) पृ० १८३ में एक अतिस्पष्ट पादटिप्पण (फुटनोट) दिया गया है, जो श्रुतसागरसूरिकी श्रुतसागरी तत्त्वार्थवृत्तिका जान पड़ता है और जिससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी द्रव्योंका प्रतिसमय वर्तन स्वभाव है तथा प्रतिक्षण उनकी उत्तरोत्तर सूक्ष्म पर्यायोंमें जो परमाणु-रूप बाह्य निश्चयकालकी अपेक्षा लेकर वर्तन—परिणमन होता है वह वर्तना है। यहाँ फुटनोटकी कुछ उपयोगी पंक्तियोंको दिया जाता है—

> "एवं सर्वेषां द्रव्याणां प्रतिसमयं स्थूलपर्यायविलोकनात् स्वयमेव वर्तनस्वभावत्वेन बाह्यनिश्चय-कालं परमाणुरूपं अपेक्ष्य प्रतिक्षणं उत्तरोत्तरसूक्ष्मपर्यायेषु वर्तनं परिणमनं यद् भवति सा वर्तना निर्णीयते"।

यहाँ "वर्तनं परिणमनं" कहकर तो वर्तनाका अर्थ परिणाम भी स्पष्टतया प्रतिपादन किया गया है। इस तरह सिद्धान्तग्रन्थोंसे यह ज्ञात हो जाता है कि पं० राजमल्लजीने वर्तनाका जो "**द्रव्याणामात्मना सत्परिणमनमिदं वर्तना**" लक्षण किया है और हमने उसका जो 'द्रव्योंके अपने रूपसे सत्परिणामका नाम वर्तना है' हिन्दी अर्थ किया है दोनों ही सिद्धान्त सम्मत हैं—गलत नहीं हैं।

अब विचारके लिये शेष रह जाता है कि यदि सत्परिणाम वर्तना है तो परिणाम और वर्तनामें भेद क्या है, क्योंकि कालद्रव्यके उपकारोंमें परिणामको भी वर्तनासे पृथक् बतलाया गया है? इसका खुलासा इस प्रकार है—

प्रथम तो सामान्यतया वर्तना और परिणाममें कोई भेद नहीं है, क्योंकि वस्तुतः परिणाम आदि जो कालद्रव्यके उपकार बतलाये गये हैं वे वर्तनाके ही भेद हैं। जैसा कि आ० पूज्यपादके निम्न कथनसे प्रकट है—

---

१. त० श्लो० वा० ५–२२, पृ० ४१३, ४१४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्; नानर्थकम्; कालद्वय-सूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य ।" —स० सि० ५–२२ ।

यहाँ शंका की है कि एक वर्तनामात्रका ग्रहण करना पर्याप्त है, परिणाम आदि तो उसीके भेद हैं, अतः वर्तनाग्रहणसे उनका भी ग्रहण हो जायगा, उनका पृथक् ग्रहण करना व्यर्थ है ? इस शंकाका आचार्य उत्तर देते हैं कि सूत्रमें उनका पृथक् ग्रहण व्यर्थ नहीं है, क्योंकि कालके दो भेदोंकी सूचना––ज्ञापन करनेके लिये प्रपञ्च—विस्तार किया गया है । तात्पर्य यह कि पूज्यपादके लिये परिणाम आदिको वर्तनाके भेद मानना स्पष्टतः अभीष्ट है । दूसरे, सत्परिणमनको वर्तना माननेपर वर्तना और परिणाम दोनों एक नहीं हो जाते । प्रतिक्षण समस्त द्रव्योंका अपनी उत्तरोत्तर सूक्ष्म पर्यायोंमें जो वर्तन सत्परिणमन होता है वह तो वर्तना है । जैसा कि पूर्वोक्त विवेचन और सर्वार्थसिद्धिके उल्लिखित फुटनोटसे स्पष्ट है और पूर्वपर्यायके त्याग और उत्तर पर्यायके उत्पादरूप जो द्रव्यमें अपरिस्पन्दात्मक विकार—पर्याय होती है उसे परिणाम कहते हैं । जैसा कि स्वयं पूज्यपादके ही निम्न कथनसे प्रकट है—

"द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामः । जीवस्य क्रोधादिः, पुद्गलस्य वर्णादिः । धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुणवृद्धिहानिकृतः" ।

—स० सि० ५–२२ ।

पूज्यपादके अनुगामी अकलङ्क[1] और विद्यानन्द[2] भी अपना यही अभिप्राय प्रकट करते हैं । इसी अध्यात्मकमलमार्तण्ड (पृष्ठ ८४) में अध्यात्मकमलमार्तण्डकारने परिणामका भी लक्षण दिया है, जिससे उनकी एकताका भ्रम दूर हो जाता है । उनका वह परिणामलक्षण इस प्रकार है—

"पर्यायः किल जीवपुद्गलभवो योऽशुद्धशुद्धाह्वयः" ।

अर्थात्–जीव और पुद्गलसे होने वाले शुद्ध और अशुद्ध परिणमनों—विकारोंको पर्याय–परिणाम कहते हैं । यहाँ ध्यान देने योग्य है कि ग्रन्थकार जीव और पुद्गलजन्य पर्याय (विकार) को ही परिणाम कहते हैं, धर्मादिद्रव्योंमें वे विकारको नहीं मानते । किन्तु तत्त्वार्थके सभी टीकाकारोंने द्रव्यविकारको परिणाम बतलाते हुए धर्मादिद्रव्योंमें भी अगुरुलघुगुणकृत विकार स्वीकार किया है और उसे भी परिणाम कहा है । अस्तु । तात्पर्य यह कि द्रव्यपर्यायोंमें प्रति समय होने वाला परिणमन तो वर्तना है और वे द्रव्यपर्यायें परिणाम हैं । यही वर्तना और परिणाममें सिद्धान्तसम्मत भेद है । यद्यपि 'वर्तना' शब्द 'णिजंत' है, किन्तु यह भी ध्यातव्य है कि 'णिज्' का अर्थ यहाँ क्या विवक्षित है । सर्वार्थसिद्धिकारके णिजर्थ सम्बन्धी पूरे अभिप्रायको यहाँ दिया जाता है—

'को णिजर्थः ? वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता कालः । यद्येवं कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयति इति; नैष दोषः; निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्टः । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति । एवं कालस्य हेतुकर्तृता ।'—स० सि० ५–२२ ।

'णिज्' का अर्थ क्या है ? द्रव्यपर्याय वर्त रही है, उसका वर्तानेवाला काल है । यदि ऐसा है तो कालके क्रियापना प्राप्त हो जायेगा । जैसे—शिष्य पढ़ता है, उपाध्याय पढ़ाता है ? यह कोई दोष नहीं, क्योंकि निमित्तमात्रमें भी कारणको कर्ता कह दिया जाता है । जैसे कण्डेकी अग्नि पढ़ाती है । यहाँ कण्डेकी अग्निको पढ़नेमें निमित्तकारण होने मात्रसे कर्ता कहा गया है । इसी प्रकार स्वतः वर्त रही द्रव्यपर्यायोंके

१. त० वा० ५–२२ ।

२. त० श्लो० वा० ५–२२, पृ० ४१४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तनमें काल निमित्तकारण होने मात्रसे वर्तयिता—वर्तनकर्ता (वर्ताने वाला) कहा है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार 'पढ़ाना' वस्तुतः उपाध्यायनिष्ठ ही है किन्तु निमित्त रूपसे कारीष-अग्निनिष्ठ भी माना जाता है उसी प्रकार वर्तना वस्तुतः समस्त द्रव्यपर्यायगत ही है फिर भी निमित्त होनेसे वर्तनाको कालगत भी मान लिया गया है। अतः वर्तनाका अर्थ मुख्यतः 'द्रव्यवर्तना' है और उपचारतः 'द्रव्योंको वर्ताना' है। सीधी द्रव्य-वर्तनाका व्यवच्छेद करके एकमात्र 'द्रव्योंको वर्ताना' वर्तनाका अर्थ नहीं है। अन्यथा सर्वार्थसिद्धिकार 'वर्तते द्रव्यपर्यायः' इतने वाक्यांशको न लिखकर केवल "द्रव्यपर्यायस्य वर्तयिता कालः' इतना ही लिखते। इससे स्पष्ट है कि सत्परिणमनको जो हमने वर्तना कहा है वह मूलकार एवं सिद्धान्तकारोंके विरुद्ध नहीं है और न गलत है।

अन्तमें जो एक बात रह जाती है वह यह कि सत्परिणमनको वर्तना माननेपर कालके अस्तित्वका समर्थक कोई दूसरा हेतु नहीं मिल सकता, उस सम्बन्धमें मेरा कहना है कि सत्परिणमनको वर्तना माननेपर कालके अस्तित्वकी साधक वह क्यों नहीं रहेगी। दूसरे द्रव्य तो उस सत्परिणमनरूप वर्तनामें उपादान ही होंगे, निमित्तकारणरूपसे, जो प्रत्येक कार्यमें अवश्य अपेक्षित होता है, कालकी अपेक्षा होगी और इस तरह वर्तनाके द्वारा निमित्तकारणरूपसे कालकी सिद्धि होती ही है। यदि इस रूपमें वर्तनाका अर्थ वर्ताना इष्ट हो तो उसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। सत्परिणमन भी वहाँ वर्ताना रूप ही हो सकता है। यहाँ ध्यातव्य है कि पूज्यपाद और अकलङ्कदेवके अभिप्रायसे वर्तना कालका असाधारण गुण और विद्यानन्दके अभिप्रायानुसार पर्याय माना गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org